© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

आचार्य अच्युतरायमोडक सम्मत काव्यलक्षण : एक विमर्श

शत्रुधन प्रसाद मिश्र
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग, इ0वि0वि0, इलाहाबाद

संस्कृत काव्यशास्त्रों में काव्य–लक्षण के विवेचन में आचार्यों में प्रायः साम्यता एवं विषमता दोनों परिलक्षित होती है। एक समय था, जब काव्य शरीर का ही विवेचन किया जाता था। भामह, दण्डी आदि के ग्रन्थाभिधानों तथा निरूपण पद्धतियों में यह तथ्य स्फुट है। शरीर से भिन्न रूप में आत्मा को जानते हुए शरीर निरूपण पर ही प्राचीनाचार्यों की दृष्टि टिकी रही, अन्तस्तत्त्व को स्फुट रूप से व्यक्त नहीं किया गया। आचार्य भामह से पूर्व से कुछ पश्चातकाल तक काव्य शरीर का ही विवेचन होता रहा तथा उसी में समस्त तत्त्व निरूपणों की इति मानी गयी। शब्दार्थ को काव्य मानने वाले, केवल शब्द को काव्य मानने वाले तथा इनके साथ भिन्न–भिन्न रूप से एक या अधिक विशेषणों का प्रयोग करने वाले काव्यस्वरूप निरूपक आचार्य हो चुके हैं। शब्द की अवस्थिति में काव्य की स्थिति मानने वाले आचार्यों ने प्रायः येन–केन प्रकारेण अर्थ की अवस्थिति को स्वीकार भी किया है।

अग्निपुराण के अनुसार व्यासदेव ने इष्टार्थ से व्यवच्छिन्न स्फुरत अलङ्कारों से युक्त, गुण से युक्त तथा दोष से रहित पदावली को काव्य माना है।[1]

आचार्य दण्डी ने भी अग्निपुराणसम्मत ही काव्यलक्षण किया है।[2] किन्तु यदि दण्डी के लक्षणगत 'व्यवच्छिन्न' का तात्पर्य परिमाप्य–परिमापकभाव से है तो काव्य में शब्द और अर्थ की समान स्थिति हो जाती है। आचार्य भामह प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने स्पष्ट रूप से शब्द और अर्थ के साहित्य को काव्य कहा।[3] वामन ने अलङ्कार को अनित्य धर्म स्वीकार करते हुए रीति अथवा

---

1 संक्षेपाद् वाक्यमिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली। (अग्निपुराण–337/6)

2 शरीरं तावदिष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली (काव्यादर्श–1/10)

3 शब्दार्थौ सहितौ काव्यं, गद्यं पद्यं च तद् द्विधा। (काव्यालङ्कार–1/16)

गुण को ही काव्य का मूल तत्त्व स्वीकार किया।[4] आचार्य आनन्दवर्धन ने अलङ्कार, गुण रीति आदि को काव्य का शरीर बताते हुये ध्वनितत्त्व को काव्यात्म रूप में प्रतिष्ठित किया। उन्होंने स्पष्ट रूप से काव्य लक्षण नहीं किया किन्तु अभाववादियों के मत के विश्लेषण में शब्दार्थ में काव्यत्व स्वीकार किया।[5] राजशेखर ने वाक्य को काव्य माना है, वाक्य तो पदसमूह ही है किन्तु राजशेखर के अनुसार पद का अर्थ शब्द नहीं अपितु शब्दार्थ–उभय है।[6]

आचार्य कुन्तक ने भामह के काव्य लक्षण में कुछ विशेषणों को प्रयुक्त करते हुए ध्वनि समकक्षीय वक्रोक्ति को काव्यात्मा के रूप में प्रतिपादित किया तथा समस्त ध्वनि प्रपंच को इसके अन्तर्गत ग्रहण कर लिया। कुन्तक के अनुसार वक्रोक्ति अलङ्कार विशेष का वाचक न होकर काव्य का वाचक है।[7] भोजराज ने निर्दोष, गुणयुक्त, अलङ्कार से अलङ्कृत तथा रसान्वित को काव्यपद प्रदान किया है।[8] आचार्य मम्मट ने अदोष गुणयुक्त तथा कहीं–कहीं अलङ्कृत रहित शब्दार्थ को काव्य के रूप में प्रतिपादित किया है–

तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि।[9]

मम्मट ने रस के अपकर्षक तत्त्वों को दोष कहा, इन्हीं मुख्य दोषों की हीनता ही उन्हें काव्य में स्वीकार्य है, क्षुद्र दोषों की सत्ता से काव्य पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। ध्वनिमार्गी होने से मम्मट का आग्रह गुण और अलङ्कार में से गुण पर ही अधिक है। ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ अलङ्कार का स्फुट अभाव होने पर भी काव्यत्व विद्यमान रहता है, जहाँ गुण–धर्म एवं रस सम्पत्ति

---

4 रीतिरात्मा काव्यस्य, विशिष्टपदरचनारीतिः। (काव्यालङ्कारसूत्र–1.1.6)

5 काव्यस्यात्मा ध्वनिरिति। (ध्वन्यालोक–1/1)

6 पदानाभिधित्सितार्थग्रन्थनाकरः सन्दर्भो वाक्यम्। तदेव वाक्यं स्फुटालङ्कारगुणविशिष्टं दोषवर्जितं काव्यम्। गुणवदलङ्कृतं च वाक्यमेव काव्यम्। (काव्यमीमांसा)

7 शब्दार्थौ सहितौ वक्रकविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।। (वक्रोक्तिजीवित–1/7)

8 निर्दोषं गुणवत्काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।। (सरस्वतीकण्ठाभरण–1/2)

9 काव्यप्रकाश–1/सूत्र 1

की सत्ता न हो वहाँ कभी–कभी अलङ्कार का चमत्कार भी शब्दार्थ को काव्य बनाने की क्षमता रखता है।

आचार्य मम्मट के काव्यलक्षण की कुछ परवर्ती आचार्यों ने आलोचना की तो कुछ ने उसे स्वीकार भी किया। चन्द्रालोककार आचार्य जयदेव ने मम्मट के 'अनलङ्कृती पुनः क्वापि' पर आक्षेप करते हुए कहा कि जो 'अनलङ्कृत' को काव्य कहता है, वह आग को ठण्डा क्यों नहीं मानता? इन्होंने निर्दोष लक्षणवती, सरीति, गुणविभूषित सालङ्कार तथा अनेक रसों वाली वृत्ति में काव्य माना है।[10]

हेमचन्द्र ने मम्मट के ही काव्यस्वरूप को मान्यता प्रदान की है।[11] विद्याधर भी आनन्दवर्धनाचार्य से प्रभावित होते हुए उनके लक्षण को ही स्वीकार करते हैं।[12] आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को ही काव्य माना है और मम्मट के काव्य लक्षण का खण्डन करते हैं।[13] पण्डितराज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करने वाले शब्द को ही काव्य स्वीकार किया है।[14] पण्डितराज के अनुसार रमणीय अर्थ उसे कहते हैं जिससे लोकोत्तर आह्लाद की प्रतीति होती है और लोकोत्तर का तात्पर्य है आह्लाद में रहने वाला चमत्कारत्वजाति, जिसका अनुभव सहृदय सामाजिक को होता है।

आचार्य अच्युतराय ने ध्वनिवाद की परम्परा के अनुसार काव्यसामान्य का लक्षण प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार शब्द तथा अर्थ के निर्दोष होने तथा गुणत्व के स्फुट रूप से युक्त होने पर गद्यादिबन्धरूप काव्य सामान्य होता है–

तत्र निर्दोषशब्दार्थगुणवत्त्वे सति स्फुटम्।
गद्यादिबन्धरूपत्वं काव्य सामान्यलक्षणम्।।[15]

---

10 निर्दोषा लक्षणवती सरीतिर्गुणभूषणा।
सालङ्काररसानेकवृत्तिर्वाक् काव्यानामभाक्।। (चन्द्रालोक–1/8)

11 अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ च शब्दार्थौ काव्यम्। (काव्यानुशासनम्–1/11)

12 शब्दार्थौ वपुरस्य तत्र विभुधैरात्माभ्यधायि ध्वनिः। (एकावली–1/13)

13 वाक्यं रसात्मकं काव्यम्। (साहित्यदर्पण–1/3)

14 रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम् (रसगङ्गाधर–1/1)

15 साहित्यसारम्–1/18

आचार्य अच्युतरायमोडक के काव्य सामान्य लक्षण में विशेषरूप से आचार्य मम्मट, जयदेव तथा भामह के काव्य स्वरूप का ग्रहण किया गया है। आचार्य अच्युतराय शब्दार्थ काव्यवादी आचार्यों की श्रेणी में हैं। वस्तुतः केवल शब्दमात्र काव्य के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि शब्द के साथ अर्थ की स्थिति भी किसी ना किसी रूप में स्वीकार की जाती है। पण्डितराज जगन्नाथ शब्द काव्यवादी आचार्य हैं किन्तु इन्होंने अपने काव्य लक्षण–''रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'' में अर्थ का भी उल्लेख किया है। आचार्य अच्युतराय ने पूर्ण दृढ़ता से शब्दार्थ का समर्थन किया है।

प्रस्तुत लक्षण के पूर्वार्ध में मुख्य दो पद हैं–निर्दोश और गुणवत्व। महत्त्व की दृष्टि से गुणवत्व तथा क्रम की दृष्टि से निर्दोष की प्रधानता है। इनके अनुसार काव्य को पूर्णतः निर्दुष्ट होना चाहिए। ये दोष की रंचमात्र भी अवस्थिति काव्य के लिए घातक मानते हैं। इस प्रकार दोष के प्रति इनका दृष्टिकोण पूर्णतः आदर्शात्मक है। निर्दोष पद को अगली कारिका के द्वारा स्पष्ट करते हैं कि ''एक भी दोष रहने पर गुण अथवा अलङ्कार से क्या लाभ, अतः निर्दोष साद्गुण्य ही विद्वानों द्वारा प्रेम से स्वीकार्य है।''[16] आचार्य भामह, दण्डी आदि का काव्य के दोषहीन होने के विषय में कठोर निर्देश है। आचार्य भामह का कहना है कि कविता न करने से न तो अधर्म होता, न व्याधि, न दण्ड किन्तु बुरी कविता को विद्वान साक्षात् मरण कहते हैं। एक भी सदोष पद का प्रयोग न हो इसका सब प्रकार से ध्यान रखना चाहिए। लक्षणरहित काव्य से कुपुत्र की तरह निन्दा होती है।[17] आचार्य दण्डी सदोष काव्यकर्ता को प्रत्यक्षतः मूर्ख कहते हैं। आचार्य जयदेव ने भी अपने काव्यलक्षण में निर्दोष पद का सन्निवेश दोष को अनावश्यक मानकर किया है। आचार्य मम्मट के काव्यलक्षण में प्रयुक्त 'अदोषौ' पद पर विश्वनाथ ने प्रविरल विषयता तथा निर्विषयता का आक्षेप किया है। वस्तुतः प्रस्तुत आक्षेप औचित्यपूर्ण नहीं प्रतीत होता है, क्योंकि इस प्रकार के

---

16 दोषे सति गुणैः किं वा किं वालङ्करणैरपि।
अतो निर्दोषसाद्गुण्यमेवात्राद्रियतां बुधैः।। (साहित्यसारम्–1/19)

17 सर्वथा पदम्प्येकं न निगाद्यमवद्यवत्।
विलक्ष्मणा हि काव्येन दुस्सुतेनेव निन्द्यते।।
नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा
कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृति माहुर्मनीषिणः।। (काव्यालङ्कार–1/11–12)

कथन द्वारा आचार्य मम्मट यह व्यक्त करना चाहते हैं कि आदर्श काव्य के लिए इन सभी विशेषणों से विशिष्ट होना आवश्यक है। उत्तम काव्य श्रेणियों से भिन्न श्रेणियों में औरों की गणना की जा सकती है। मम्मट द्वारा प्रयुक्त तीन विशेषणों में से क्रमशः एक–एक को छोड़ते हुए काव्य की तीन श्रेणियों का निर्धारण किया जा सकता है। अदोषौ सगुणौ सालङ्कारौ उत्तम काव्य, सगुणौ सालङ्कारौ मध्यमकाव्य, सालङ्कारौ अधमकाव्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार उत्तम काव्य का यही लक्षण उपयुक्त होगा। काव्य सामान्य का स्वरूप निरूपण करते हुए भी आचार्य अच्युतराय ने मम्मटाभिमत अदोषौ के स्थान पर निर्दोष पद से दोष की सर्वथा व्याजता को ही हृदयङ्गम कर लिखा है।

दोष में एकवचन तथा गुण में बहुवचन के प्रयोग से भी यह परिलक्षित होता है कि ग्रन्थकार काव्य में एक भी दोष की अवस्थिति को स्वीकार नहीं करते तथा अपने सरसामोद व्याख्या में ''एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणेष्विवाङ्कः'' इस न्याय का उद्धरण भी देते हैं।[18] काव्यलक्षण में महत्त्व की दृष्टि से प्रथम तथा क्रम की दृष्टि से द्वितीय विशेषण 'गुणत्व' है। गुण शब्द में अधिकरण में सप्तमी वि0 के प्रयोग से भी इसका आधारत्व सूचित होता है। आचार्य अच्युतराय को गुण शब्द से न वामनाभीष्ट दस शब्दगुण अभिप्रेत है और न ही मम्मट प्रतिपादित ओज, प्रसाद और माधुर्य। गुण के विषय में अच्युतराय की दृष्टि अत्यन्त व्यापक है। आचार्य अच्युतराय ने अपना विवेचन गुण को आधार न मानकर गुणत्व को आधार मानते हुए प्रस्तुत किया है। गुणत्व की सामान्य शर्त है–''रसिकाह्लादकत्व''। इस प्रकार रसिकों को आह्लादित करने वाले जितने भी तत्त्व हैं, चाहे वे रीतियाँ हो, गुण हों, या अलङ्कार, रस या कुछ अन्य सभी को एकमात्र गुण के अन्तर्गत ग्रहण किया गया है। आचार्य अच्युतराय ने गुण को छः रूपों में माना है।[19] गुणों का निरूपण प्रायः सभी लाक्षणिकों ने किया है। परन्तु इस प्रकार का व्यापक रूप में गुण का उल्लेख किसी ने भी नहीं किया। गुण का इस प्रकार विवेचन ग्रन्थकार की मौलिकता है।

---

[18] अत्र दोषे इत्येकवचनेन गुणैरिति बहुवचनेन च
एको हि दोषा गुणसन्निपाते .... इति न्यायः प्रयुक्ता। (सरसामोद, पृ0 9–10)

[19] धर्मा रसा लक्षणानि रीत्यलङ्कृतिवृत्तयः।
रसिकाह्लदका ह्येते काव्ये सन्ति च षड्गुणाः।। (साहित्यसारम्–1/20)

सगुणौ विवेचन का मूलाधार आचार्य वामन का प्रतिपादन है। ''स च दोषगुणालङ्कारहानादानाभ्याम्'' के द्वारा सगुणौ के प्रति प्रेरणा स्फुट है। आचार्य मम्मट ने भी वामनोल्लेख से प्रेरित होकर सगुणौ को ग्रहण किया है। गुणत्व की प्रेरणा आचार्य अच्युतराय को मम्मट से न मिलकर आचार्य वामन से मिली है, क्योंकि एक तो सगुणौ के स्थान पर गुणत्व का उल्लेख किया गया है तथा दूसरा सौन्दर्य की तरह गुण का ग्रहण व्यापक अर्थ में किया है। ग्रन्थकार ने गुण की रसधर्मिता का पक्ष लेते हुए गुण निरूपण किया है। पण्डितराज जगन्नाथ ने गुण की रसधर्मिता के प्रति आपत्तियाँ उठायी हैं। ग्रन्थकार ने उनका निराकरण करते हुए गुण की रसधर्मिता के पक्ष का समर्थन किया है। गुणत्व के प्रस्तुत विवेचन को आगे बढ़ाते हुए ग्रन्थकार ने गुण तथा अलङ्कार के सम्बन्धों के विषय में भी निरूपण प्रस्तुत किया है। ग्रन्थकार ने गुण के अन्तर्गत अलङ्कार को भी ग्रहण किया है फलतः गुणत्व के अन्तर्गत इसका विवेचन किया है। ग्रन्थकार का प्रतिपादन है कि अलङ्कार प्रायः गुणों के अन्तर्गत ही निरूपित किये जाते हैं।[20] कहीं–कहीं गुण के बिना भी अलङ्कारों की स्थिति पायी जाती है, फिर भी अलङ्कार की प्रधानता नहीं होती है बल्कि गुणों की प्रधानता होती है।[21] गुणत्व सामान्य के अन्तर्गत आचार्य अच्युतराय ने माधुर्य, ओज और प्रसाद गुण का ग्रहण किया है। रसो से तात्पर्य श्रृङ्गारादि से, लक्षण से अक्षर संहति आदि से, रीतियों से गौड़ी, पांचाली आदि से अलङ्कृत से अनुप्रास, उपमा आदि अलङ्कारों से तथा वृत्ति से तात्पर्य मधुरा आदि वृत्तियों से है।

ग्रन्थकार ने 'शब्दार्थौ' पद का उल्लेख कारिकाभाग में न करके सरसामोदव्याख्या में किया है, इसे भामह तथा मम्मट का प्रभाव स्वीकारा जा सकता है। भामह के पूर्ववर्ती कालिदास ने यद्यपि काव्य लक्षण नहीं किया है तथापि रघुवंश के प्रथम मङ्गलश्लोक में वाणी तथा अर्थ की तरह सम्पृक्त पार्वती परमेश्वर की वन्दना कर शब्दार्थ की समान महत्ता को स्फुट किया है।[22]

---

20 अलङ्कारा गुणेष्वेव ग्रन्थ्यन्ते प्रायशो भुवि।
गुणेभ्योऽतः पृथकत्वेन प्रगल्भानां न तदग्रहः।। (साहित्यसारम्–1/21)

21 अलङ्कारेष्वपि गुणा यद्यप्यन्तर्भवन्ति हि।
तथाप्याधारतायोगान्मुख्यास्तेऽतः सुधीप्रियाः।। (साहित्यसारम्–1/22)

22 वागर्थाविव सम्पृक्तौ, वागर्थप्रतिपत्तये। (रघुवंश–1/1)

आचार्य अच्युतराय ने स्वकाव्यलक्षण को एक ही साथ व्यापक तथा आदर्श बनाने का यथासम्भव प्रयास किया है। आचार्य अच्युतराय द्वारा प्रतिपादित काव्यलक्षण परम आदर्शात्मक है तथा यह भी कहा जा सकता है कि ग्रन्थकार ने समन्वयात्मिका दृष्टि का अवलम्बन कर स्वकाव्यलक्षण को सर्वाभिप्रायानुमोघ बनाने का प्रयास किया है। प्रस्तुत काव्यलक्षण में भामह, दण्डी, वामन, आनन्दवर्धन, वाग्भट, विद्याधर, मम्मट, जयदेवादि के काव्यस्वरूप विषयक मतों के सारांश को एकत्रकर सम्मिलित किया गया है। ग्रन्थकार की मौलिकता संक्षिप्त रूप से सर्वग्राहिता में है।

काव्य सामान्य का उदाहरण–

यं चिन्तयति निश्चिन्तं फुल्लयेन्दिरयावृतः।

तमेव वाणीरमणी परिणेतुं समातुरा।।[23]

प्रस्तुत श्लोक को काव्य सामान्य के उदाहरण के रूप में उपस्थित किया गया है। ग्रन्थकार ने सर्वप्रथम स्वकाव्यलक्षणानुसार निर्दोष पद के सापेक्ष प्रस्तुत पर विचार किया है। ग्रन्थकार ने वाणी के समातुराधिक्य की व्यंजना के लिए वैपरीत्य से प्रयुक्त होने के कारण प्रस्तुत दूषण को भूषण मान लिया है। प्रस्तुत में माधुर्य गुण है। जिसका शान्त में चरमोत्कर्ष होता है। प्रस्तुत में शान्त रस है। समास का अभाव होने के कारण वैदर्भी रीति है। वाणी पर रमणी के आरोप के कारण रूपकालङ्कार है। मधुरावृत्ति का होना स्फुट है। अतएव प्रस्तुत पद्य आदर्श काव्यस्वरूप के उदाहरण के लिए सर्वथा उपयुक्त है।

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. वक्रोक्तिजीवितम्–कुन्तक– पं0 परमेश्वरीदीन पाण्डेय, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, 2013
2. काव्यमीमांसा–राजशेखर–गङ्गासागरराय, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2009
3. रसगङ्गाधर–पण्डितराजजगन्नाथ–पं0 मदनमोहन झा, चौखम्भा विद्याभवन, 2012
4. चन्द्रालोक–जयदेव–डा0 श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
5. साहित्यसारम्–अच्युतराय–डा0 ददन उपाध्याय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2004

---

23 साहित्यसारम्–1/27

6. ध्वन्यालोक–आनन्दवर्धन–आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2010
7. साहित्यदर्पण–विश्वनाथ–डा0 निरूपण–विद्यालङ्कार, साहित्य भण्डार, मेरठ, 2011
8. काव्यालङ्कार–भामह–डा0 रूपनारायण त्रिपाठी, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2014
9. काव्यालङ्कारसूत्राणि–वामन–श्री हरगोविन्दशास्त्री, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2015
10. काव्यप्रकाश–मम्मट–आचार्य विश्वेश्वर, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, 2008
11. संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास–पी0वी0 काणे, डा0 इन्द्रचन्द्र शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2011
12. संस्कृत का अर्वाचीन समीक्षात्मक काव्यशास्त्र–प्रो0 अभिराज राजेन्द्रमिश्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2010
13. संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास–आचार्य रेवा प्रसाद द्विवेदी, कालिदास संस्थान, वाराणसी, 2007
14. आधुनिक संस्कृत काव्यशास्त्र–डा0 आनन्द कुमार श्रीवास्तव, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2012
15. अग्निपुराण–व्यास–श्रीतारिणीश झा, डॉ0 घनश्याम त्रिपाठी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, इलाहाबाद, 1998
16. काव्यादर्श–दण्डी–आचार्य श्रीरामचन्द्र मिश्र, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 2005
17. सरस्वतीकण्ठाभरण–भोजराज–चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2008
18. एकावली–विद्याधर, डा0 ब्रह्ममित्र अवस्थी, इन्दु प्रकाशन, दिल्ली, संवत् 2047 विक्रमी
19. काव्यानुशासन–हेमचन्द्र–पं0 शिवदत्तशर्मा, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी।
20. काव्यालङ्कार–रुद्रट–श्री रामदेव शुक्ल, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, 1989